मरुस्थल

राही हूं उस पथ का,
जिसकी दिशा स्वयं मुझे नही मालूम,
रेत ही रेत है चारों ओर।

पद चिन्ह भी,
साथ छोड़ जाते हैं कुछ समय बाद,
नामो निशाँ नहीं रहा उसका,
जिस पथ से मैं आया था।

दूर तक,
नीला आकाश और ये अन्तहीन मरुस्थल,
असमर्थ हूं ढूंढ़ पाने में,
गंतव्य की ओर जाने वाली,
उस निश्चित दिशा को।

फिर भी,
प्रतीत होता है मुझे,
खिलता हुआ एक कमल,
इसी सूखी रेत की कीचड़ में।

इसी के सहारे,
मिला है एक उत्साह मुझे,
बंधी है एक आशा,
और प्रयासरत हूं मंजिल पाने को,
पार कर तपती रेत के इस मरुस्थल को।

हन्सी, अवर श्रेणी लिपिक